हीरे की बात

गद्यकाव्य और लघुकथाएँ

डॉ० प्रेमनारायण टंडन

प्रकाशक
हिंदी - साहित्य - भंडार
गंगाप्रसाद रोड, लखनऊ

प्रथमावृत्ति, १९५६
मूल्य १॥)

मुद्रक
विद्यामंदिर प्रेस
रानीकटरा, लखनऊ

उस 'पल' को

जिसमें युग के सुख सिमट आते हैं

अपनी बात

काव्य-रचना वस्तुत: ऐसी मानसिक स्थिति में होती है जब वस्तु, पात्र अथवा प्रसंग-विशेष को लक्ष्य करते ही कोई चमत्कारपूर्ण विचार बिजली की तरह कौंध कर क्षण भर के लिए कवि के मस्तिष्क को असाधारण रूप से आलोकित कर देता है। प्रस्तुत संग्रह की अधिकांश रचनाएँ ऐसी ही मानसिक स्थिति में लिखी गयी हैं। उनके पढ़ने से पाठक का चित्त भी यदि कभी चमत्कृत हो सका तो मैं अपना प्रयास सफल समझूंगा।

इस संकलन में संगृहीत रचनाएँ पिछले बीस वर्षों में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होकर हिंदी जगत के सामने आ चुकी हैं। अन्य पत्र-पत्रिकाओं में तो सभी रचनाएँ मेरे नाम से ही प्रकाशित होती रही हैं, परंतु स्व-संपादित मासिक पत्रिका 'रसवंती' में रचनाओं के साथ कभी कभी छद्म नाम भी देने पड़े हैं। ऐसी प्राय: सभी रचनाएँ पिछले दो-तीन वर्षों की लिखी ही हैं।

दूसरों की रचनाएँ पढ़ते समय भी गद्य-काव्य अथवा लघु कथा लिखने के सूत्र मुझे मिलते रहे हैं। अतएव संभव है, प्रस्तुत संग्रह की किसी रचना में किसी हिंदी-अहिंदी भाषी देशी-विदेशी लेखक या कवि के विचारों की छाया पाठक को मिले। इस तथ्य से स्वयं अवगत होते हुए भी लगभग बीस वर्षों के दीर्घ काल में लिखी गयी उन रचनाओं के शीर्षक बताना मेरे लिए अब संभव नहीं है; हाँ, उन लेखकों के प्रति मैं हृदय से कृतज्ञता प्रकट करता हूं।

—प्रे० ना० टंडन

सूची

प्रथम भाग : गद्य-काव्य

प्रथम भाग : गद्यकाव्य

संदेश

उस दिन देखा—

नव नील नीरद मध्य चमक चमककर, क्षण भर में ही आँखें चौंधियाकर, चपला बार-बार छिप जाती है—जैसे सघन अघ-समूह के संसार में कोई दिव्य ज्योति अवतीर्ण होकर अदृश्य हो जाती हो।

× × ×

कवि ने सोचा—

लोक-जन-रंजन-कारिणी दामिनी का क्या कोई संदेश है ?

उत्तर मिला—

वह रूप की जीवन-लीला का अभिनय कर रही है।

सूखे तिनके

समुद्र के किनारे कुछ हरे-भरे छोटे पौधे लगे थे। उन्हीं के पास कुछ सूखे तिनके पड़े थे।

लहर का एक झोंका आया। हरे पौधों को नहलाकर उसने उनका रूप निखार दिया; पर सूखे पौधों को वह बहा ले चला।

हरे-भरे पौधों ने यह दृश्य देखा तो खुशी और गर्व से झूमने लगे; तिनकों की परवशता पर उन्हें जोर की हँसी आयी।

उस हँसी से सूखे तिनके खीझे नहीं। उन्होंने धैर्य से उत्तर दिया—हम डूबते का सहारा बनने जा रहे हैं।

रहस्य

मंद-मंद वायु में स्वच्छंद विहरण करता एक चंचल पक्षी पिंजड़े में बंद एक सजातीय की ओर ताक रहा था जैसे उसकी प्रसन्नता का कारण जानने को उत्सुक हो।

स्वतंत्र पक्षी ने मुक्त वायु में हर्षोल्लास से किलोलें करते हुए दूसरे से साश्चर्य पूछा—जिस पिंजड़े में पंख फैला सकने का भी स्थान नहीं, उसी में बंदी होकर भी तू प्रसन्न कैसे है ?

दूसरे ने तत्काल उत्तर दिया—अरे, तेरे विस्तृत नभ में भी तो क्षण भर विश्राम करने के लिए कोई आधार नहीं है ! परंतु अंतिमांश कहते-कहते न जानें क्यों उसका स्वर धीमा हो गया।

× × ×

कवि सोचने लगा—

संतोष का मूल क्या विवशता भी हो सकती है ?

जंगल

जंगल से किसी ने पूछा—तेरी सार्थकता क्या है केवल यही न कि तुझे काट-काटकर जलाया जाय ?

जंगल ने उत्तर दिया—ठीक है। पर मैं अपने जलानेवालों की अग्नि शांत करने के लिए मेघों को आकर्षित करके उन्हें जल बरसाने को प्रेरित भी करता हूँ।

संतुष्ट कौन ?

प्रकाशित प्रातःकाल की मोददायिनी वायु से पुलकित होकर एक छोटा पक्षी फुदक रहा था, सुरीले स्वर से चहचहा रहा था।

कुछ क्षण बाद विस्तृत आकाश-मंडल में काले-काले मेघ उमड़ने-घुमड़ने लगे।

प्रसन्नता से पुलकित होते हुए उस छोटे पक्षी ने मेघों की ओर देख ठंढी साँस ली और मन में कहा—क्या ही अच्छा होता यदि मैं भी इसी प्रकार स्वच्छंद होकर गगन-मंडल में इतना ऊपर उठ जाता और मुक्त विचरण कर नाचता फिरता !

उधर, मेघ के विशाल उर में भी एक वेगवती लालसा उठ रही थी—कैसा भाग्यशाली होता मैं यदि इस छोटे पक्षी की तरह ही चहकने-फुदकने और फुर्र से उड़ जाने की क्षमता होती मुझमें !

× + ×

कवि ने सोचा—इस प्रपंचात्मक जगत के जड़ और चेतन अंगों में अपनी स्थिति से क्या कोई भी संतुष्ट है ?

जागृति

जगत के हाहाकारी कोलाहल ने उसे जगा दिया। खुमारीभरी आँखें उसने खोलीं; एकबार विवश उपेक्षा से अलसाई दृष्टि उठाकर उसने चारो ओर देखा—भीषण संघर्ष, भयंकर स्पर्धा, लोलुपता और स्वार्थ का तांडव नृत्य। और यह सब हो रहा था सभ्यता और मानवता के नाम पर !

बस, क्षोभपूर्ण घृणा से भरकर, ऊबकर, उसने फिर आँखें बंद कर लीं।

जाग्रतों और उत्थितों ने व्यंग्यपूर्ण ढंग से हँसकर कटाक्ष किया—जीवन कर्तव्यों से भरा है; कर्मवीर के लिए जीवन में विश्राम कहाँ ?

उसने सुना, पर उत्तर न दिया और यह दिखलाने के लिए कि कुछ सुना ही नहीं, उसने उपेक्षा से करवट बदल ली।

परंतु मन में उसके अशांति थी जिसे समझाने के लिए मन ही मन उसने कहा—नग्न सभ्यता-प्रदर्शन को भला 'जागृति' कहना चाहिए ?

और फिर निश्चिंत हो सो गया वह।

छोटा बड़ा

एक विशाल वृक्ष की छाया से हटकर मैं खड़ा था और मेरे हाथ में एक सुंदर, छोटा आइना था।

मैं यह देखकर चकित रह गया कि वह विशाल वृक्ष उस छोटे आइने में एक अंगुल के बराबर भी नहीं था।

× × ×

कवि ने वृक्ष देखा और देखा उसके प्रतिबिंब को। उसके मन में एक प्रश्न उठा—जो हमें इतना छोटा दीखता है, क्या वह वस्तुतः इतना महान् भी हो सकता है ?

खोज

शुभ्र श्वेत गगन में स्वच्छंद विचरनेवाली वायु, शीतल निकुंज के कुसुमित सुमनों की सुगंध से मस्त हो जब लताओं से अठखेलियाँ कर रही थी, तभी शांति की खोज में पागल कवि उसके मधुर स्पर्श से चौंक पड़ा।

जिज्ञासा भरी दृष्टि से कवि ने क्रीड़ा में रत वायु की ओर देखा; जैसे वह जानना चाहता था कि अखिल विश्व के कोने-कोने में रमने वाली यह वायु तो शांति का ठौर जानती ही होगी।

तभी एक झोंका आया। वायु ने मानो उत्तर दिया—सभी दिशाओं में, सभी स्थलों में इतनी तीव्र गति से मैं शांति का निवास ही खोजती फिरती हूँ; परंतु कहीं भी तो शांति नहीं मिली। कवि ! शांति की आशा से ही तो मैं तुम्हारे पास आयी थी।

× × ×

कवि उत्तर सुनकर ठगा-सा रह गया।

जड़ता

देव-गृह को सुरभित करने के लिए भक्त ने धूप का उपयोग किया और आरती के लिए कपूर का।

कुछ क्षणों में धूप और कपूर, दोनों की स्थूलता भस्म हो गयी; केवल उनकी सूक्ष्मता शेष रही।

भक्त ने प्रफुल्लित होकर वर माँगा—देव, इन जड़ पदार्थों का आदर्श अपनाने में मैं भी समर्थ हो सकूँ; अपने संपर्क के वातावरण को सुरभिपूर्ण और आलोकित करके इसी प्रकार मैं भी विलीन हो जाऊँ तो जीवन धन्य हो जाय।

भक्त इतना कहते-कहते चरणों में नत-मस्तक हो गया।

कवि की दृष्टि मूर्ति के मुख पर थी। उसने देखा—मूर्ति के होंठ हिल रहे हैं। उसने सुना—दूसरे को जड़ समझने की अपनी जड़ता को पहले भस्म कर; तेरा जीवन भी सार्थक हो जायगा।

× × ×

कवि जानना चाहता था कि भक्त के कान तक ये शब्द पहुँचे या नहीं। उसने भक्त की ओर ध्यान से देखा; परंतु कुछ समझ न सका; क्योंकि वह अब भी आत्म-विभोर हो नतमस्तक पड़ा था।

श्मशान

पंचभूत—निर्मित नश्वरता भस्म हो रही थी।

स्नेह-सी जीवन की असफल अभिलाषाएँ अग्नि को और भी प्रज्ज्वलित कर रही थीं।

समीप खड़े संबंधियों का भग्नहृदय स्मृति की शीतल लपटों से झुलस रहा था।

एक भयंकर शून्यता व्याप रही थी।

× × ×

और कवि सोचने लगा—

क्या यह आवश्यक है कि सुदूर जानेवाले इस पथिक की विदा पर विषाद भरे आँसू बहाये जायँ ?

लालसा

पागल-सा न जाने कब से तुम्हें ढूँढ़ रहा हूँ; पर तुम कहीं नहीं मिलते।

तुम्हारा कल्पित दिव्य रूप मंत्र-मुग्ध और आश्चर्यचकित हो ललचायी दृष्टि से देखा करता हूँ; परंतु तब भी तुम अदृश्य ही रहते हो।

तुम्हारे सम्मिलन की मधुर कल्पना करते-करते जब मैं मोद-प्रवाह में बेसुध हो बहने लगता हूँ, तब तुम जैसे झटका देकर भाग जाते हो।

× × ×

कवि ने पूछा—

तब तुम चाहते क्या हो ? उनसे मिलकर उन्हीं में समा जाना ?

मैंने कुछ सोंचकर उत्तर दिया—नहीं, नहीं; मैं अपनी कल्पित आशा में ही सुखी हूँ। केवल इतनी ही लालसा है कि यह आशा भर बनी रहे।

देवता कौन ?

मंदिर में अपार भीड़ थी।

कुछ भक्त देव-मूर्ति के सम्मुख दंडवत् पड़े थे, कुछ पुजारी जी के श्रीचरणों पर झुके थे, कुछ देव-मंदिर की देहली पर मस्तक टेक रहे थे और कुछ विख्यात भक्तों के चरण-स्पर्श का पुण्य-लाभ कर रहे थे।

इस प्रकार का सम्मान देख देव-मूर्ति को ध्यान आया—मैं ही तो भगवान हूँ।

देव-मंदिर तभी सोच रहा था—मैं ही तो प्रणम्य हूँ।

पुजारी का भी अभिमान जागा—मुझसे बढ़कर कौन है ?

और देव-भक्त तो घोषणा ही करने लगा—संसार में मैं ही सर्व पूज्य हूं।

संसार ने सबकी बातें सुनीं और धीरे-धीरे सब पर विश्वास करके सबके प्रति नम्रता दिखायी।

परंतु कवि का अंतर्यामी बराबर हँस रहा था।

———

मनोवृत्ति

हरे-भरे आम्र वृक्ष पर बैठी कोकिला ने सरस स्वर से मधुर तान छेड़ी।

मैदान के उस पार से, दूसरे वृक्ष पर बैठे कोकिल ने प्रेम-विभोर हो उसमें सहयोग दिया।

जग के नर-नारियों ने कोकिल-कोकिला का प्रणय-संगीत सुना। उन्होंने परस्पर रहस्यभरे संकेत किये और उन दोनों की खोज में पड़ गये।

एकाकी कवि उस गान को सुनने में तन्मय था। उन दोनों का ही नहीं, वह तो अपने भी अस्तित्व को भूल चुका था।

ममता

उसे गुलाब का फूल बहुत अच्छा लगता था। कितने ही काँटे चुभें, खिला हुआ गुलाब देखते ही वह उसे प्राप्त करके ही चैन लेता था।

एक दिन उसकी वाटिका में, उसी के लगाये-सींचे वृक्ष में एक गुलाब खिला। अत्यंत पुलकित होकर जब वह पौधे के पास पहुँचा तब सहसा उसके हाथ रुक गये। उसके हृदय में जैसे किसी ने पूछा-क्या इसी दिन के लिए तुमने इसे सींचा था? इसी दिन के लिए इतने काँटों के बीच खिलने की इसे प्रेरणा दी थी? इसी दिन के लिए तुम्हारा संकेत पाकर उसने आतप, वर्षा और शीत सहा था?

वह न जाने क्यों रुक गया और न जाने क्या सोचने लगा। कुछ क्षण बाद, जीवन में पहली बार, सदा के स्वभाव के विपरीत, गुलाब के उस फूल को तोड़े बिना ही वह लौट पड़ा।

\+ + +

तभी कवि के मुख से निकल गया—ममता! तू धन्य है!

हीरे की बात

अकस्मात एक अनमोल हीरा पाकर मैं खुशी से फूल गया, गर्व से इठला गया और मेरे मुख से अनायास निकल गया—संसार में मुझसा भाग्यशाली कौन है ?

हीरे के एक पारखी मिले। उन्होंने मेरा हीरा परखा। कुछ गंभीर स्वर में बोले—चीज सुंदर तो बहुत है; परंतु इसमें एक दोष है। यह जिसके पास रहेगा, उसे मानसिक शांति नहीं मिल सकती।

पारखी महोदय चले गये। मैं उनके कथन पर विचार करता रहा; परंतु मेरी आत्मा ने उस पर विश्वास नहीं किया।

वह हीरा अब भी मेरे पास है। सचमुच कभी कभी मैं चिंताओं से इतना व्यथित हो जाता हूँ कि प्राणांत कर देने की इच्छा होती है। परंतु उस हीरे को मैं सदा छाती से ही लगाये रखना चाहता हूँ। वह है ही इतनी प्यारी चीज कि चिंताओं से जर्जर हो जाने का भय भी उसे मुझसे अलग नहीं कर सकता।

\+ + +

संसार ने हीरे की कहानी सुनी। उसने कहा—तत्काल त्याग देना चाहिए था ऐसी चीज को। अब भी उसको नहीं त्याग देता जो, निस्संदेह वह वज्र मूर्ख है।

\+ + +

कवि ने हीरे की कहानी सुनी। उसने कहा—बड़े भाग्य से हीरा मिलता है किसी को। रही मिटने की बात; सो मिटना तो है ही सबको। अपने हीरे को छाती से लगाये यदि कोई मिट सके, तो मिटना भी धन्य हो जायगा।

जिज्ञासु

एक जिज्ञासु एक दिन एक साधु की सेवा में प्रस्तुत हुआ।

साधु ने स्मित मुद्रा से उसका स्वागत किया।

जिज्ञासु ने सविनय प्रणाम किया।

साधु ने आशीर्वाद दिया।

जिज्ञासु ने उपहार अर्पित किया।

साधु ने उसे भी ग्रहण किया और जिज्ञासु की कल्याण-कामना की।

तब जिज्ञासु ने सविनय निवेदन किया—सब धर्मों का सार जानने की आशा से मैं सेवा में उपस्थित हुआ था।

साधु ने उत्तर दिया—वह तो मैं तुम्हें बता चुका।

जिज्ञासु आश्चर्य से उसकी ओर ताकने लगा।

साधु फिर बोला—धर्म का सार तर्क या धर्म-ग्रंथ का पठन-पाठन नहीं, आचरण है और वह जीवन के दैनिक व्यवहार में ही निखरता है।

जिज्ञासु कुछ समझा या नहीं, कहा नहीं जा सकता। हाँ, उस समय वह संतुष्ट अवश्य हो गया; परंतु लौटते समय हाट से धर्मशास्त्र भी वह खरीदता लाया।

मेरे आराध्य

जिस क्षण से होश सँभाला है, कुछ न कुछ करता ही रहा हूँ। जो कुछ किया उसमें भला भी है, बुरा भी है—भला कम है, बुरा अधिक है।

एक दिन मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि मेरे हृदय पर एक तरह का बोझ है और उसका भारीपन बढ़ता ही जाता है, यहाँ तक कि वह बोझ मुझे असह्य जान पड़ने लगा। तब मेरा ध्यान अपनी आत्मा की ओर गया। बहुत चिंतन के पश्चात् मुझसे जैसे किसी ने कहा—पाप का बोझ तो नहीं है यह ?

मुझे यह प्रश्न कुछ सार्थक जान पड़ा। ज्यों-ज्यों मैं इसकी सार्थकता पर विचार करता गया, त्यों-त्यों बोझ बढ़ने का क्रम समाप्त होता गया; परंतु बहुत-कुछ प्रयत्न करने पर भी हृदय पर जो पहला बोझ था, उसका भार कम नहीं हुआ। पाप की ओर से अरुचि भी कम न हो सकी; जब भी उसके लिए अवसर पाता, जी ललक ललक पड़ता।

अंत में मैं तुम्हारी शरण पहुँचा। तुम्हारे दर्शन करके, मेरे देवता ! मुझे विशेष शांति मिली। इससे उत्साहित होकर बड़े दीन स्वर में मैंने अपनी भूलें कह सुनायीं, अपनी बार-बार की मूर्खता की चर्चा की और अपने गुप्त पापों और अपराधों को भी नहीं छिपाया। तब मुझे ऐसा अनुभव हुआ जैसे हृदय का हिम-सा भार

पश्चाताप की अग्नि से गल गल कर बह रहा है। और अपना वक्तव्य समाप्त करते करते मैंने अनुभव किया कि खिन्नता और उदासीनता का सारा भाव दूर हो चुका है। उस दिन से मुझे पाप से विरक्ति हो गयी, उसकी बात सोचना भी मुझे रुचिकर नहीं लगता।

तब क्या पाप से बचाव उसके ज्ञान में नहीं, प्रत्युत उसके बखान में, आत्मनिवेदन में और पश्चाताप में ही है और क्या यही सच्चा प्रायश्चित है ?

विश्वास

मनोरम सौंदर्य की ज्योति से विश्व को आलोकित करती उषा के प्रिय दर्शन कर, और हृदय में नवीन उमंगों का संचार करनेवाले समीरण को सारे जड़-चेतन विश्व को सजग कर उल्लास बाँटते देखकर मैंने समझा—तुमारे अभिनंदन और स्वागत का ही यह आयोजन है।

मेरे हृदय की प्रसन्नता तभी तरल ओस-विंदु में नाचने और श्रद्धा-पक्षियों के कलरव में तुम्हारी गुणावली गाने लगी।

प्रतीक्षा में समय बीत चला; पर तुम नहीं आये। फिर भी मैं निराश नहीं हूँ और तुम्हारे स्वागत के लिए निरंतर आँखें बिछाये हूँ।

कारण ?

मुझे विश्वास है कि तुम्हारे विधान में देर है, अंधेर नहीं। अपने प्रेमी को दर्शन देने के लिए तुम कभी न कभी अवश्य आओगे—तुम्हें आना पड़ेगा।

प्रेम का मोल

चलती हाट के चतुष्पथ पर प्रेम ने सबको संबोधित कर कहा—मैं अपने को बेचना चाहता हूँ। कोई भी मेरा मूल्य देकर मुझे खरीद सकता है।

वैभव ने आगे बढ़कर मणिमुद्रा बिखेरते हुए कहा—जितना मूल्य हो तेरा, सहेज ले।

प्रेम ने उसकी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा।

विलास ने अपने सुख-साधनों का प्रलोभन देते हुए मदभरी चितवन से वासना की ओर इंगित करके कहा—इससे भी बढ़कर है मूल्य तेरा?

प्रेम ने उसकी ओर से मुँह फेर लिया।

शक्ति ने सावेश प्रवेश करके कहा—मेरे साथ चल। मैं बरबस तुझे अपना बनाऊँगी।

परंतु प्रेम को उसका दल-बल जौ भर भी न हिला सका।

तब निश्छलता, लाजभरी चितवन से एक बार उसकी ओर देखकर और फिर दृष्टि नीची करके, मधु-सिंचित स्वर में बोली—तुम्हारा मोल आँकने या तुम्हें क्रय करने का दुस्साहस और धृष्टतापूर्ण विचार तो कभी मेरे मन में आ नहीं सकता; हाँ, अपना विश्वासपूर्ण हृदय देकर सदैव के लिए तुम्हारी हो जाने की कामना अवश्य रखती हूँ मैं। आशा है, तुम मुझे अपनाकर मेरा जीवन सार्थक कर दोगे।

प्रेम ने प्रफुल्लित होकर कहा—देवि, मैं तो चिरदास हूँ तुम्हारा।

प्रेम की मृत्यु

निर्जन स्थान पर एकाकी विचरते प्रेम को क्रोध, दंभ, ईर्ष्या, द्वेष, मत्सर आदि ने घेर लिया और सभी उसकी हत्या कर डालने के लिए वार पर वार करने लगे।

आघात करते करते थक जाने पर सबने बड़े आश्चर्य से देखा—प्रेम का बाल भी बाँका नहीं हुआ है; उसके मुख पर दिव्य आभा है और वह स्वस्थ खड़ा मुस्करा रहा है।

सबने मन ही मन प्रेम की शक्ति से हार मान कर सर झुका लिया।

तभी छल और असत्य ने पीछे से प्रेम पर चोट करने का निश्चय किया।

परंतु उनके आघात के पूर्व ही, प्रेम निष्प्राण होकर गिर पड़ा।

सबने आँखें फाड़कर यह दृश्य देखा; परंतु प्रेम की मृत्यु का कारण कोई न समझ सका।

× × ×

संसार के लिए प्रेम की मृत्यु आज भी एक रहस्य है।

आग और लोहा

आग धधक रही थी और उसमें पड़ा हुआ लोहे का टुकड़ा भी अंगार-सा लाल हो रहा था ।

कवि के अंतर में प्रश्न उठा—यह आग क्या है ?

उत्तर मिला—पार्थिवता को भस्म करने में समर्थ एक दिव्य शक्ति ।

और लोहा किसका प्रतीक है ?

उन महत् जनों का जिनमें दिव्य शक्तियों का संपर्क होते ही उनके गुण अपना लेने की क्षमता होती है जिसके बल पर पहले वे अपनी कलुषता भस्म करते हैं, पश्चात् अन्य पार्थिवों को ।

आपाधापी

सरिता ने अपना सर्वस्व सागर को सौंपा। सागर ने अपना सर्वस्व मेघों के लिए सुलभ कर दिया। मेघों ने तृप्त होकर पुनः सरिताओं को जल से पूर्ण कर दिया।

इस प्रकार सर्वस्व-दान से सरिता-सागर-मेघ, सभी भरेपुरे हैं, तृप्त हैं।

परंतु मानव जगत में प्रजा, शासक का भाग दबाने में लगी है; शासक, प्रबंधक के लिए सुविधाएँ सुलभ नही करता और प्रबंधक प्राप्त साधनों को स्वयं ही हड़प जाना चाहता है।

इस प्रकार प्रजा-शासक-प्रबंधक, सभी रीते हैं, अभावग्रस्त हैं, असंतुष्ट हैं।

कवि सोचने लगा—क्या यह आपाधापी ही संसार में सबके दुखी होने का मूल कारण है ?

छोटे-बड़े

जल में छोटी मछली को उससे बड़ी, उसको उससे और बड़ी भक्षण करती रहती है। जल-जंतुओं का यही जीवन-क्रम है।

थल पर निर्बल पशु को सबल, सबल को उससे और सबल भक्षण करता रहता है। पशुओं का यही जीवन-क्रम है।

आकाश में छोटे पक्षी को बड़ा, बड़े को उससे और बड़ा भक्षण करता रहता है। पक्षियों का भी यही जीवन-क्रम है।

जल के जीव-जंतुओं से, थल के पशुओं से और आकाश के पक्षियों से मानव बड़ा है, क्योंकि उसने निर्बलों की रक्षा की व्यवस्था की है।

परंतु मानव के उस वर्ग की स्थिति क्या होगी जो अकारण ही निर्बल सजातियों का बध किया करता है और उसके दम तोड़ते शरीर को तड़पता छोड़कर अट्टहास करके आगे बढ़ जाता है?

काँटे का उत्तर

गुलाब के पेड़ में लगा सुन्दर फूल मैंने ज्योंही तोड़ा, एक काँटा मेरे चुभ गया। पीड़ा से तिलमिलाकर मैंने काँटे से कहा—रे दुष्ट! दूसरों के चुभकर पीड़ा पहुँचाने में तुझे कौन सा सुख मिल जाता है? अरे, अपने भाई, इस फूल को देख, इसी से कुछ सीख!

काँटे ने उत्तर दिया—ऐ मेरे सिखानेवाले, मैं तेरे घर जाकर और चुभकर तो पीड़ा देने गया नहीं; मैं तो तेरे तब चुभा हूँ जब तू मेरे घर डाका डालने, फूल तोड़कर मेरी माता की गोद सूनी करने आया था। तब दुष्ट मैं हूँ या तू?

और मैं काँटे के मुँह लगना उचित न समझ, जेब से तेज चाकू निकाल, उसकी धृष्टता का मजा चखा देने का उपक्रम करने लगा।

———

मंदिर और पगडंडी

घने जंगल के बीच होकर एक पतली पगडंडी पहाड़ी पर बने मंदिर तक गयी थी।

एक दिन मंदिर ने गर्व में भर कर उससे पूछा—री पगडंडी, मुझ पर जिन बड़े-बड़ों के मस्तक झुकते हैं, तुझ पर उन्हीं के पैर पड़ते हैं। मुझ पर फूल चढ़ते हैं, तुझ पर धूल उड़ती है। मेरी प्रभुता और महत्ता देखकर तेरी लघुता तुझे चुभती नहीं? कचोटती नहीं?

पगडंडी हँसी। उसने उत्तर दिया—तेरे भक्तों-उपासकों को राह दिखाने और उनकी पावन पद-रज सर पर धारण करने का सौभाग्य मुझे अपनी लघुता से ही तो मिला है। मेरी दिन-रात की गति भी इसी लघुता की देन है। अतएव हे अचल ! तू मेरे आनंद को कैसे समझ सकता है?

---

(३८)

एकता-भिन्नता

कुम्हार खिलौने बना रहा था। देखते-देखते उसने ढेर सी गीली मिट्टी लेकर नदी-पर्वत, पेड़-पौधे, मगर-मछली, गाय-बैल, हाथी-घोड़े, सिंह-चीते, हंस-मयूर, आदमी-बंदर, देवता-दानव—बहुत से खिलौने बना डाले। तदनंतर उनके सुखाने-पकाने का प्रबंध करके वह पहले के बनाये-सुखाये खिलौनों को रँगने-सजाने में लग गया।

तभी एक प्रश्न मेरे मस्तिष्क में कौंध गया—संसार के खिलौनों में तत्व की एकता रहने पर भी आकृति-प्रकृति और रूप-रंग की भिन्नता का कारण क्या उस कुम्हार की निजी रुचि या इच्छा ही है ?

———

प्रगति का मूल

एक बच्चा खड़े होने का पहला प्रयत्न कर रहा था। वह बार-बार उठना चाहता, लेकिन कभी आधा, कभी चौथाई उठते ही गिर पड़ता। कई दिन तक इसी प्रकार प्रयत्न करते रहने पर एक दिन उसे सफलता मिल ही गयी और वह खड़ा होकर अपनी सफलता पर ताली बजाने लगा।

उस समय सफलता के शिखर पर खड़े उस बच्चे ने प्रसन्नता से जो किलकारी भरी थी, वह आज भी कानों में गूँज रही है और जैसे बार-बार नव प्रेरणा प्रदान करती हुई कहती है—संसार की सारी प्रगति का मूल यही है।

दुख का कारण कौन ?

संसार में प्रति पल न जाने कितने प्राणियों पर संकट पड़ता है, न जाने कितने विलग होते, नष्ट होते और मरते हैं। और हम उनकी विपत्ति, उनके वियोग, उनके सर्वनाश, उनकी मृत्यु, सबसे निर्लिप्त, केवल अपने सुख में लीन रहते हैं।

परंतु जिसको हम 'अपना' कहते-मानते हैं, उसको जरा सा कष्ट हो जाय, वह कुछ समय के लिए ही हमसे विलग हो जाय, उसको थोड़ी भी हानि हो जाय, तो हम उदास हो जाते हैं, दुखी हो जाते हैं, हमारा सारा सुख, सारा आनंद फीका हो जाता है, मुख कांतिहीन हो जाता है, साँसें लंबी हो जाती हैं और आँखें पावसी ताल सी भर भर आती हैं।

तब क्या सारे दुख का कारण 'अपनापन' ही है ?

दो पात्र

काँसे और स्वर्ण के दो पात्र लिये मैं बैठा था। सहसा काँसे का पात्र हाथ से छूट पड़ा। उसके गिरने से एक कर्कश झनझनाहट हुई और पात्र टूट गया।

तब मैंने स्वर्ण का पात्र जानबूझकर छोड़ दिया।

उसकी झनझनाहट में मधुरता तो थी ही, गिरने पर भी पात्र न टूटा, न चिटका; हाँ, गिरने से उसमें एक चिह्न अवश्य पड़ गया।

× × ×

कवि सोचने लगा—दो धातुओं में इतना अंतर !

———

धनी कौन

संसार में धनी कौन है ? क्या वह, जिसके नाम पर बैंक में बहुत बड़ी धन-राशि जमा है ?

नहीं ।

क्या वह, जिसके पास बहुत चल-अचल संपत्ति है, मकान-जायदाद है, लम्बा-चौड़ा कार-बार है ?

नहीं ।

क्या वह जिसका परिवार भरा-पुरा है, बेटे-बहुएँ हैं, नाती-पोते हैं ।

नहीं ।

तब क्या वह जिसके पास रूप है, गुण है, विद्या है, योग्यता है, कलाकार या साहित्यकार की प्रतिभा है ?

नहीं, वह भी नहीं ।

तब सच्चा धनी कौन है ?

वह जिसने अपनी इच्छाओं को नियंत्रित कर लिया है, क्योंकि इच्छाओं का नियंत्रण ही वह बीज है जिसका पौधा कल्पवृक्ष के समान होता है और जिसमें 'संतोष' का अमर फल लगता है ।

प्रगति

एक करोड़ वर्ष पूर्व—

मनुष्य को प्यास लगी। वह अधीर होकर जल-स्रोत की खोज में दौड़ा। उसने अँजुली से जल पान किया और किलकारी भरने लगा।

एक लाख वर्ष पूर्व—

मनुष्य जल-स्रोत के समीप ही बस गया। उसकी अधीरता समाप्त हो गयी। वह निश्चिंत हो गया। उसे जब प्यास लगती, वह जलपान करता और कुछ समय के लिए संतुष्ट हो जाता।

बीस हजार वर्ष पूर्व—

मनुष्य प्यास की प्यास को समझ गया। उसने पत्थर, मिट्टी तथा धातुओं के पात्र बना लिये जिनमें जल भरा रहता था। अब उसे हर बार जलस्रोत तक जाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। इससे जो समय बचा उसे मनुष्य दूसरे कामों में और दूसरी बातों के सोचने में लगाने लगा।

दस हजार वर्ष पूर्व—

मनुष्य को जब प्यास लगी तब वह अपने पात्र को सुन्दर कलात्मक रूप दे रहा था। अपने प्रयास में सफल होकर उसने वह कृति देखी। आधी तुष्टि उसे कृति से मिली, आधी जल-पान से। परंतु वह संतोष भी स्थायी नहीं था।

और आज—

आज मनुष्य प्यास से ही मुक्ति पाने के लिए अधीर है जिससे उसका संतोष स्थायी हो जाय ।

दीपक

युगों पूर्व मानव ने एक दीपक का निर्माण किया था। उसको स्नेह की आवश्यकता होती थी और उसकी लौ ऊपर की ओर उठती थी; परंतु उसके नीचे अंधकार रहता था।

नवयुग में मानव ने एक नये दीपक की खोज की हैं। इसको स्नेह की आवश्यकता नहीं होती, इसकी लौ ऊपर-नीचे, दायें-बायें सभी ओर की जा सकती है और उसके किसी ओर भी अंधकार नहीं रहता।

परंतु एक बात दोनों युगों के दीपकों में समान है। दोनों के बुझते ही घना अंधकार और गहरा सन्नाटा छा जाता है।

———

युगक्रम

ज्ञानियों ने कहा—माया के दो रूप हैं—विद्या और अविद्या। इनसे सावधान रहो।

मनुष्य न सुन सका, न समझ सका। उसकी दृष्टि में था—एक कोमल कुसुम।

माया के मुख पर मुस्कराहट खेल रही थी।

ज्ञानी ने देखा कि मनुष्य माया के मुख की मुस्कुराहट को लक्ष्य न कर सका। जिस कोमल कुसुम पर उसकी दृष्टि गड़ी थी, वह उसी की ओर बढ़ रहा था।

माया ने हँसकर ज्ञानी की ओर देखा।

ज्ञानी ने मानव पर तिरस्कार की दृष्टि डालकर उसकी ओर से मुँह फेर लिया।

सुमन के समीप पहुँचने के पूर्व ही मनुष्य के काँटा चुभा, उसने एक बार 'ओफ' किया; पर उसकी लोलुप दृष्टि पुष्प पर ही थी। अंत में उसने लपक कर उसे तोड़ लिया और काँटों से छिद गया, घिर गया; परंतु उसने इसकी जरा भी चिंता न की। उसके मुख पर संतोष का ही भाव था।

माया यह देखकर खिलखिला पड़ी।

ज्ञानी चौंक पड़ा; उसकी इच्छा मानव को सावधान करने की

हुई और वह अपने को रोक न सका। परंतु मानव चुभे हुए काँटे निकालते-निकालते भी उसी ओर बढ़ रहा था जिधर काँटे बिछे थे।

सुमन की सुगंध मनुष्य को मतवाला बनाये थी, उसके पराग से उसकी आँखें इस तरह मुँदी जा रही थीं कि उसे चारो ओर के काँटे भी नहीं दिखायी दे रहे थे और फूल की पंखुड़ियों के कोमल स्पर्श से पुलकित हो वह अपने को ही नहीं, काँटे चुभने की पीढ़ा को भी भूल गया था।

तभी माया ने अट्हास किया और ज्ञानी क्षोभ से भर गया।

दर्पण

दर्पण आप देखते हैं, मैं देखता हूँ, संसार देखता है। उसमें हम सबको अपना प्रतिबिंब दिखायी देता है।

और हम सब हैं क्या ?

दार्शनिक ने इस प्रश्न का उत्तर दिया—हम सब ईश्वर के प्रतिबिंब हैं।

तब दर्पण में एक ही प्रतिबिंब के भिन्न-भिन्न छायाबिंब क्यों दिखायी देते हैं ? क्या इसका कोई संदेश है ?

दार्शनिक ने कहा—हाँ, यदि जगत को एक विशाल दर्पण समझने की साधना कर ली जाय, तो भेद-भाव मिट जायगा और सभी प्राणी स्व-प्रतिबिंबवत् ही ज्ञात होंगे।

———

सृष्टि क्या है

सृष्टि वह सरोवर है जो प्रेम-जल से निरंतर परिपूर्ण रहता है। इस सरोवर में तरंगों का आगमन मिलन है और उनका प्रत्यागमन, वियोग।

जो भाग्यवान् इस रहस्य से अवगत हो जाता है, वही आत्मा-परमात्मा की नित्य लीला के आनंद का अनुभव करते-करते एकरस हो सकता है।

स्वर किसका ?

ईश्वर की खोज करते करते हारकर जीव ने कहा—बड़ी मूर्खता की मैंने जो उस निराकार को पाने की आशा से अब तक भटकता फिरा।

तभी उसे सुनायी दिया—पगले, तेरे खोज में लगने के पूर्व से ही मैं तेरे साथ हूँ। तुझे फुर्सत भी तो मिले मुझे देखने की !

और जीव इस स्वर को सुनता तो है, पर पहचानता नहीं। वह आज भी चकित होकर सोचता है—यह स्वर किसका है !

उपाय

अपनी उलझनों, परेशानियों और समस्याओं से ऊब कर उनसे छुटकारा पाने के लिए मैं एक साधु के पास पहुँचा।

मैंने कहा—भगवन्! इतने झंझट हैं, इतना संघर्ष है, इतनी समस्याएँ हैं कि इस छोटी सी जिंदगी में तो कुछ भी होता नहीं दिखायी देता। क्या इस जिंदगी को बड़ा करने का कोई उपाय नहीं है?

साधु बोले—है क्यों नही; अपनी इच्छाओं को छोटा कर ले, तब देख, जिंदगी कितनी बड़ी हो जाती है।

धनी की पहचान

जाड़े का प्रातःकाल। वाटिका में एक व्यक्ति बढ़िया अचकन और चूड़ीदार पाजामा पहने, ओवरकोट डाटे, मफलर लपेटे टहल रहा था। उसके दोनों हाथ ओवरकोट की जेब में थे। तभी अपने एक परदेशी मित्र के साथ मैं उसके सामने जा पहुँचा। दुआ-सलाम के बाद हम दोनों आगे बढ़ गये।

कुछ दूर जाकर मैंने उस परदेशी मित्र से कहा—यह शहर का सबसे धनी आदमी है।

मित्र हँसा और बोला—जान तो नहीं पड़ता; क्योंकि इसके दोनों हाथ तो अपनी जेबों में हैं और धनी वही हो सकता है जिसके दोनों नहीं तो कम से कम एक हाथ तो हर समय दूसरे की जेब में रहे।

रूपक

सुन्दर वाटिका में खिले रंग-बिरंगे फूलों पर इंद्रधनुषी छोटी-छोटी तितलियाँ इधर-उधर स्वच्छंदता-सरलता से उड़ रही थीं।

कुछ चपल स्वस्थ बालक उन तितलियों से खेल रहे थे—किसी को पकड़ कर सुनहला रंग छुड़ा लेते, किसी को अनजान में ही कोमल स्पर्श से मसल देते।

निःसहाय तितलियों पर इन खिलाड़ियों को जरा भी दया न आती।

समस्त वाटिका इसी क्रीड़ा का केंद्र थी।

× × ×

कवि सोचने लगा—

हम तितलियों के साथ भी तो कोई इसी तरह खेलता है।

मनुष्यता

सुरम्य वाटिका में सजग प्रभात के समय मैं घूम रहा था। कुछ फूल खिले थे, कुछ कलियाँ खिलने को थीं जो मंद समीर के झोंको से नवल-नवेलियों-सी इठला रही थीं। पवन उनकी सुगंध वितरित करता; इससे द्रुम-दलों को वैसी ही प्रसन्नता होती जैसी जननी-जनक को पुत्र के यश-लाभ से होती है।

अन्त में वे सुमन भी देखे जो अपनी जीवन-लीला की समाप्ति पर धूल में लोट लोट कर बिलख रहे थे; जिन पर ओस-कण अश्रु-बिंदु-से टपक रहे थे।

× × ×

कवि सोचने लगा—

फूल अपने एक ही दिन के जीवन में सबको सुखी कर जाता है; पर मनुष्य का जीवन सभ्यता की नग्नता दिखाते ही बीतता है। क्या यही मनुष्यता है ?

भिखारिणी

जीर्ण-शीर्ण कांतिहीन और कुरूप भिखारिणी ।

सबकी आंख बचाकर सब उसे देखते, पर दूसरों की दृष्टि पड़ते ही सब उसे दुत्कार देते ।

वह सकरुण दृष्टि से एक बार शून्य की ओर ताक कर चली जाती । सब सुनती, सब देखती और सब सहती ।

पर उसकी आत्मा से सदैव असीस ही निकलती—ऐसी असीस जिसे न चित्रकार चित्रित कर सकता है और न कवि व्यक्त । उसे समझने के लिए उसी की आत्मा चाहिए—हाँ, उसी की आत्मा चाहिए ।

× × ×

कवि सोचने लगा—क्या सत्य ही वह भिखारिणी है ?

प्रभाव

मृग-सी तृष्णा लिये प्रसन्नता-जीवन की असफल खोज में ठोकरें खाते-खाते एक दिन देखा—

स्वस्थ हँसमुख बालक धूल में खेल रहा है; घरौंदा बनाता, हवा गिरा देती और वह फिर बनाने लगता ।

मंत्र-मुग्ध-सा देखते रहकर कुछ देर बाद सोचा—किसका घर होगा ?

उत्तर मिला—प्रसन्नता का ।

और बनाने वाला ?

मोद ।

\+ + +

वायु मुदित हो खेल रही थी और मैं मुदित हो देख रहा था ।

———

गुलाब का संदेश

हरी-लाल पत्तियों के बीच गुलाब का एक खिला फूल खिलखिला रहा था।

फूल के चारो ओर पैनी नोंकें सीधी किये टेढ़े-तिरछे काँटे नंगी तलवारें लिये-से खड़े थे।

काँटों की ओर से निश्चिंत सुमन दैवी प्रतिभा-सी सुरभि जन-जन के लिए लुटा रहा था जैसे सृजनहार की सुषमा का एक कण पाकर, उसकी महत्ता के अनुभव से चमत्कृत होकर, जीव-मात्र का चित्त दिव्य आह्लाद से भर रहा हो।

× × ×

कवि सोचने लगा—विघ्न-बाधाओं से घिरे संसार में महत् आत्माएँ उनकी उपेक्षा कर दिव्य विभूतियों का इसी प्रकार मुक्त दान करें—क्या गुलाब के इस खिले फूल का यही संदेश है ?

———

अंत

वायु-वेग से जाती हुई गाड़ी के दोनों ओर प्रकृति का सुहावना दृश्य दिखायी दे रहा था।

फूलते हुए तरुवर पर एक सुन्दर पक्षी पंख फैलाये, दर्शकों के नेत्रों का आकर्षण-केन्द्र बना बैठा था।

उस पर दृष्टि पड़ते ही मंत्र-मुग्ध-सा मैं खिड़की की ओर दौड़ा।

तभी देखा—पक्षी अनंत की ओर उड़ा और देखते-देखते अदृश्य हो गया।

इधर, वृक्ष से सुमनाश्रु झर रहे थे।

× × ×

मैं सोचने लगा—सौंदर्य स्वयं अनंत में लीन होने को उतावला रहता है या अनंत ही उसे अपनी ओर आकर्षित होने को प्रेरित करता है?

दृष्टि-बंधन

उस दिन पढ़ा कि किसी ने किसी की आँख फोड़ दी।

पढ़ते ही मस्तिष्क को एक झटका लगा और मैं किसी के उस कुकृत्य का कारण सोचने लगा।

अंत में एक उत्तर सूझा—संभवतः ऐसे कुकृत्य का कारण यह हो कि आँख रहते तो किसी की दृष्टि को बाँधा नहीं जा सकता।

सुगंध : प्रतिभा

बहुत मादक सुगंधवाले एक सुमन को खिलते देख मुझे एक कौतूहल सूझा। उसके गमले को मैंने कमरे की भीतरी अलमारी में बंद कर दिया।

दूसरे दिन जागते ही मालूम हुआ कि उसकी मादक गंध सारे घर में फैल चुकी है और परिवार के सभी लोग पूछ रहे थे—यह सुगंध कहाँ से आ रही है ?

तभी मेरे मन में एक विचार कौंध गया—किसी के बंदी बना लिये जाने पर भी उसके गुण, उसकी प्रतिभा का पता संसार को लग ही जाता है।

दृष्टि और क्षितिज

दूर तक देख नहीं पाता, इसलिए चश्मे की आँखों से काम लेता हूँ।

एक दिन चश्मा उतार कर देखा तो जान पड़ा कि क्षितिज की परिधि जैसे सिमट आयी है। चश्मा लगा लेने पर वह पुनः अपनी सामान्य स्थिति को पहुँच गयी।

तभी मन में यह धारणा दृढ़ हो गयी कि संसार की सारी परिधियाँ हमारी दृष्टि की पहुँच के अनुरूप ही संकुचित और विस्तृत होती रहती हैं।

— ——

फूल : सौंदर्य : गंध

एक बहुत ही सुंदर फूल उस दिन वाटिका में देखा। सौंदर्य से आकृष्ट होकर मैं तत्काल उसके निकट पहुँचा और सुरभि के लोभ से उसे सूँघ बैठा। पता लगा—उसमें गंध है ही नहीं।

और मेरा मन उसकी ओर से विरक्त हो गया।

लहरें : कामना

एक दिन सरोवर के किनारे बैठा हुआ मैं जल में कंकड़ियाँ डाल रहा था। बड़ी कंकड़ी पड़ने पर जो लहरें उठतीं वे किनारे तक पहुँच जाती थीं; पर छोटी कंकड़ी के गिरने से उठनेवाली लहरें जरा दूर जाकर मिट जाती थीं।

सहसा विचार आया—मन में उठनेवाली कामना की भी तो यही लीला है। किनारे तक पहुँच जाने वाली और बीच ही में लुप्त हो जाने वाली—दोनों तरह की कामनाओं का एक ही मन में जन्म होना आघात या ठेस की गति के अनुरूप ही तो होता है।

सबसे मूल्यवान

प्रश्न हुआ—संसार में सबसे मूल्यवान क्या है ?

एक ने उत्तर दिया—हीरे-रत्न, मणि-मुक्ता; इनसे बढ़कर मूल्यवान क्या हो सकता है जो संसार को खरीद सकते हैं।

दूसरा बोला—प्राणी के 'प्राण' ही सबसे मूल्यवान हैं जिनकी रक्षा के लिए अनंत मणि-मुक्ता और रत्न-कोष सहर्ष लुटा दिये जाते हैं।

तीसरा कुछ देर सोचता रहा, फिर धीरे से बोला—क्या किसी अपने के 'दो आँसू' ही सबसे मूल्यवान नहीं हैं जिन पर प्राणों का बलिदान करने को प्रत्येक सहर्ष प्रस्तुत हो जाता है ?

खिला फूल

वाटिका में एक मनोरम फूल खिला। उसके सौंदर्य से मैं इतना आकृष्ट हुआ कि निकट पहुँचकर उसे मैंने हाथों के संपुट में भर लिया।

तभी मुझे ऐसा लगा कि जैसे वाटिका को श्रीहीन बनाने का दुस्साहस मैंने किया हो। और मैं खिले फूल को खिला छोड़कर हट आया।

अब मुझे प्रतीत हुआ कि जैसे फूल के साथ सारा वातावरण खिल-खिला पड़ा—मेरे लोभ पर या मेरे त्याग पर!!

और तभी मैं भी खिलखिला पड़ा—अपनी मूर्खता पर या अपनी सुबुद्धि पर!!

मैं और फूल

मेरी बड़ी इच्छा थी कि संसार का सर्वोत्तम फूल मेरी ही वाटिका में खिले ।

लेकिन मेरी यह इच्छा पूरी न हुई और एक दिन देखा कि मेरे फूलों से कहीं अधिक सुन्दर फूल पड़ोसी की वाटिका में खिल रहा है ।

तब मैंने कामना की कि उस फूल का कम से कम पता तो दूसरों को न हो ।

परंतु मेरी यह कामना भी पूरी न हुई और उस फूल की सुगंध ने चारों ओर के वातावरण को सुरभित करके सबको अपने अस्तित्व का समाचार दे दिया और सभी उसकी सुगंध की प्रशंसा करने लगे ।

उस फूल की सुरभि ने मेरे घर को भी सुरभित कर दिया था ; परंतु मैं इससे प्रफुल्लित न हो सका ।

घटाएँ

उस दिन चारों ओर से घटाएँ उमड़ती-घुमड़ती चली आ रही थीं और तृषित धरातल के चर-अचर, सभी प्राणी असीम प्रसन्नता से उनका स्वागत कर रहे थे।

थोड़ी देर की वर्षा में ही मनुष्य के बनाये हुए सर- सरोवर, ताल-तलैया, सभी उतराने लगे और चारों ओर तृप्ति की साँस ली जाने लगी।

तभी कवि सोचने लगा—मनुष्य ने जल को बंदी बनाना तो सीख लिया, परंतु मेघमालाएँ आज भी स्वछंत्र हैं ; उनके विचरने की गति और दिशा अभी बाँधी नहीं जा सकी है।

सुखी कौन

धनी-निर्धन, मालिक-सेवक, राव-रंक, विद्वान-अपढ़, सभ्य-असभ्य, पदाधिकारी-पदहीन, गृहस्थ-संन्यासी, स्त्री-पुरुष, युवक-युवती, बालक-बालिका, सभी से मैंने पूछा—मैं समझता हूँ, आप सुखी होंगे।

सब का एक ही उत्तर मिला—अरे हमें सुख कहाँ ? सुखी तो हम तब होते जब ···· ···· ···· ····।

कपूर

देवता की आरती का समय आया तो 'कपूर' की माँग हुई। उसी समय मेरे मन में एक प्रश्न उठा—आखिर आरती के लिए 'कपूर' की ही माँग क्यों होती है ?

आरती होती रही, पर मेरा मन उसमें न लगा। मैं बराबर अपने प्रश्न के संबंध में ही सोचता रहा ; फिर भी कोई समाधान मुझे न सूझा।

आरती समाप्त होते ही मैं उस पात्र के निकट जा खड़ा हुआ। मैंने देखा—अन्य वस्तुओं के जलने पर जैसी भस्म या राख बच रहती है ; वैसी कुछ भी कपूर के जलने पर शेष न थी ; उसका सर्वांश देव-चरणों में विलीन हो चुका था।

और अपने प्रश्न का मौन उत्तर पाकर मैं पूर्णतया संतुष्ट हो गया।

अग्नि

यज्ञ का आयोजन था। अग्नि प्रकट करने के लिए काष्ठ का बड़े वेग से घर्षण किया जा रहा था।

पर्याप्त समय बीत गया; पर अग्नि प्रकट न हुई। जन-समूह निराश हो चला था; परंतु विज्ञों ने समझाया—अभी और घर्षण की आवश्यकता है।

-स बार और भी तीव्रता से प्रयत्न किया गया, फिर भी अग्नि के दर्शन न हुए।

जन-समूह चिंतित हो गया; कलियुग में शक्तिह्रास की बातें होने लगीं; परंतु विज्ञ वर्ग ने प्रोत्साहित करते हुए कहा—न प्रयत्न में कमी आने दो और न विश्वास में; अग्नि अवश्य प्रकट होगी।

श्रद्धालु वर्ग आश्वस्त होकर पुनः घर्षण-कार्य में संलग्न हुआ कि सबके देखते-देखते काष्ठ से अग्नि प्रज्ज्वलित हो गयी।

———

धन : प्रकृति : परम पुरुष

एक युग था जब मानव ने धन को अधिक महत्व नहीं दिया था। सुनते हैं, तब वह प्रकृति का अंग था और परम पुरुष के भी वह अत्यंत निकट था। उसके सुख की सारी सुविधाएँ वे दोनों जुटा दिया करते थे।

एक युग है कि मानव ने धन को अत्यधिक महत्व दे दिया है। अब हम देखते हैं कि प्रकृति से उसका संबंध विछिन्न हो गया है और परम पुरुष उसके लिए गूँगा-बहरा हो गया है। अब वह सुख-साधनों की खोज में स्वयं मारा मारा फिर रहा है।

———

ममता की छाया

'माता की महिमा' का बखान करते हुए एक मनीषी ने कहा—बालक को ज्यों-ज्यों अपनी शक्ति पर विश्वास होता जाता है, त्यों-त्यों माता उसकी ओर से निश्चित होकर उसके विचरने की परिधि बढ़ाती जाती है। फिर भी अपनी शक्ति के प्रति विश्वास में अपूर्व सफलता पाकर बालक चाहे माता को भूल जाय, परंतु माता की ममता आशीर्वाद बनकर सर्वत्र उसकी रक्षा में यत्नशील रहती है।

और कवि सोचने लगा—माता की ममता, समस्त जीवों को जन्म देनेवाले जनक की ममता की छाया तो नहीं है ?

कृपा-किरण

एक वनस्पति-विशेषज्ञ ने सहज भाव से कहा—सूर्य की एक किरण का स्पर्श ही फलों को मधुर बना देता है।

और मैं सोचने लगा—जो अनंत सूर्यों की ज्योति और ऊष्मा रखता है, उसकी एक कृपा-किरण पाकर क्या मर्त्य अमृत नहीं हो सकता ?

———

शत्रु के प्रति

चंद्रग्रहण का समय व्यतीत हो चुका था। राहु के मुख से बचकर चंद्र का पूर्ण बिंब पुनः जगमगा रहा था।

सहसा मन में विचार आया—कुछ समय पश्चात राहु पुनः इसी प्रकार आक्रमण करेगा। क्या चंद्र ने उससे मुक्ति पाकर भी उसका नाश नही किया ? शत्रु को पुनः शक्ति-संचय के लिए छोड़ दिया ?

उत्तर में किसी ने कहा—सुधाकर की महानता को हम भूलोक-वासी नहीं समझ सकते ; क्योंकि हम तो विश्वास करते हैं प्रतिहिंसा में और चंद्रमा का हृदय इतना उदार है कि अपने शत्रु को भी अमृत-कण दान करके अमर कर देता है।

चिनगारी

सामने आग धधक रही थी और एक तत्वज्ञ बड़े ध्यान से उसे देख रहा था।

इसी समय आग से असंख्य चिनगारियाँ निकलीं और दूर तक छिटक गयीं। तत्वज्ञ यह देखकर किसी गंभीर चिंता में लीन हो गया।

उसका ध्यान भंग करते हुए मैंने उसके चिंतन का कारण पूछा। वह बोला—आग से उत्पन्न जिस प्रकार ये असंख्य चिनगारियाँ उसी का रूप-गुण रखने पर भी अपनी शक्ति को न पहचानकर नष्ट हो रही हैं, उसी प्रकार की स्थिति जीव की रहती है जब तक वह यह नहीं समझता कि अनंत शक्तिशाली का अंश होने के कारण मेरी शक्ति भी असीम है।

और मैं कभी आग को देखता रहा, कभी चिनगारियों को।

———

प्रकाश

प्रकाश जीवन का प्रतीक है। जिस प्राणी को जीवन प्रिय होता है, वह प्रकाश का भी प्रेमी होता है।

प्रकाश सदाचार का पर्याय है। जो प्राणी सदाचारी है, उसको प्रकाश ही रुचिकर होता है।

प्रकाश सौंदर्य की परिभाषा है। सौंदर्य का यथार्थ रूप प्रकाश में ही देखा जा सकता है।

प्रकाश बल का दाता है। प्रकाश में रहने तक प्राणी सदैव सबलता का अनुभव करता है।

प्रकाश का पुण्य से अभिन्न संबंध है। जो प्राणी पुण्य करता है वह सदैव प्रकाश में ही रहता है।

प्रकाश का दूसरा नाम ही ज्ञान है, ज्ञान होने अर्थात् प्रकाश पाने पर व्यक्ति आत्मसाक्षात्कार के परमानंद में मग्न रहने लगता है।

प्रकाश परब्रह्म का प्रतिनिधि है जिसको प्राप्त करने के पश्चात् कुछ और पाने की चाह नहीं रह जाती।

द्वितीय भाग : लघुकथाएँ

(३)

आश्रय-आधार

एक हरे-भरे वृक्ष पर दो अमरबेलें छायी थीं। दोनों अपनी हरियाली से झूम रही थीं; अपने परम सौभाग्य से इठला रही थीं।

उन लताओं में एक बड़ी थी, एक छोटी। बड़ी लता में खिलती दो कमनीय कलिकाओं को स्नेह से छोटी ने अपनी गोदी में ऐसे भर लिया था, जैसे उसी की जायी हों।

बड़ी लता ने वृक्ष से सानुराग कहा—तुम्हीं तो आश्रय हो हमारे, देवता !

वृक्ष ने स्निग्ध और मधुर स्वर में उत्तर दिया—तुम दोनों भी तो आधार हो मेरा, जीवनदायिनी !

कुछ क्षण बाद छोटी लता न जानें क्या सोचकर सहसा पूछ बैठी—और यदि कभी मैं सूख जाऊँ तो ?

वृक्ष इस प्रश्न के लिए तैयार न था। चौंककर उसने पहले छोटी लता की ओर देखा, फिर बड़ी की ओर; और तब एक लंबी साँस लेकर गंभीर स्वर में बहुत धीरे से कहा—इसके पूर्व ही सूख जाऊँगा मैं और मेरे साथ ही सूख जायगी तेरी यह बड़ी बहन और.......और.......तब अनायास सूख जायँगी ये अधखिली कलियाँ बिना खिले ही। आह !

इतना कहकर वृक्ष साश्रु नयनों से आकाश की ओर ताकने लगा।

तभी सारे वातावरण में शोकमयी आर्द्रता की एक लहर दौड़ गयी और कवि भी सिहर उठा।

सुख : इस पार : : उस पार

उस दिन निर्जन नदी तट पर नौका बाँधकर जब मैं एकाकी पत्थर पर बैठा, तब कुछ सूना-सूना लग रहा था। तभी दूसरे किनारे पर दृष्टि गयी। दूर तक फैली हुई हरियाली, चहचहाते हुए पक्षी, कोकिलकंठ से गाती ग्राम-बालाएँ, रँभाती गायें, सब कुछ इतना भला लगा कि उधर ही देखता रह गया। तभी जैसे किसी ने कान में कहा—प्रकृति का सारा सौंदर्य, सारा सुख, उस पार ही है।

और मैं नाव खोलकर उस पार ही सुख-सौंदर्य पाने चल दिया।

उसी समय दूसरे किनारे से भी एक नौका खुली। नदी के बीच में दूसरी नाव के समीप आने पर मैंने पहचाना—उसमें तो मेरा मित्र था! मेरा हृदय खिल गया। मैंने उससे इस पार की ओर आने का कारण पूछा।

मित्र ने कहा—उस किनारे पर तो मैं पाँच ही मिनट में ऊब गया। तभी मेरी दृष्टि इस पार के हरे-भरे वृक्षों पर पड़ी। बस, मुझे जान पड़ा कि इधर ही मन को सच्ची शांति मिल सकती है। और मैं इस ओर चल पड़ा।

इतना कहते-कहते मेरा मित्र इस पार के दृश्य में जैसे रम गया। और मैं बीच नदी में नौका पर बैठा कभी इस पार देख रहा था, कभी उस पार। मेरे मन में उस समय यही प्रश्न बार-बार उठ रहा था कि सुख इस पार है या उस पार।

कपोत-कपोती

एक कपोत था, एक कपोती थी। दोनों के नीड़ निकटवर्ती दो कोटरों में थे। कभी कपोत उस कपोती के यहाँ जाता, कभी कपोती उसके यहाँ आती। घंटों दोनों साथ-साथ रहते और साथ-साथ ही प्रायः वे हँसते-खेलते, खाते-पीते। दोनों स्वच्छंद थे, सुखी थे। मृदुल स्पर्श का परम पुलककारी सुख दोनों को अपूर्वानंद से भर देता था। भविष्य के संबंध में दोनों सुनहरे स्वप्न देखते थे।

एक दिन द.नों कटोरों के बीच में महीन तारों की जाली लग गयी। अब दोनों एक दूसरे को दूर से देख सकते थे हँस सकते थे, रो सकते थे, अपना सुख-दुख कह सकते थे; परंतु मृदुल स्पर्श के सुख से वंचित हो गये थे। कुछ समय तक दोनों को इसकी बड़ी व्यथा रही; परंतु समय ने उन्हें इस जीवन का अभ्यस्त बना दिया। दोनों ने धैर्य रक्खा और दर्शन-संलाप में ही संयोग-सुख का अनुभव करने लगे।

एक दिन दोनों बंधन में फँस गये। अब उन दोनों के बीच में लकड़ी का परदा था। दोन: को एक दूसरे के निकट ही होने का आभास तो मिलता, एक दूसरे की गर्म-गर्म साँसों का अनुभव भी उन्हें पुलकित करता, परंतु प्रत्यक्ष दर्शन से अब वे वंचित थे। अब थोड़ा-बहुत संलाप-सुख ही कभी-कभी उनको मिल पाता था।

ऐसी स्थिति में संसार के नियम-क्रम को समझने का दोनों

प्रयास करते और अपने को धैर्य भी यह कहकर दे लेते कि हमारे संयोग-संस्कार इतने ही दिनों के लिए थे; फिर भी कभी कपोत परदे पर सिर दे मारता, कभी कपोती बिलख-बिलखकर आँसू बहाने लगती।

संसार उन्हें देखता रहा, देखता रहा; परंतु उनकी वेदना को न समझ सका।

एक दिन कपोती को न जाने कहाँ भेज दिया गया और कपोत अकेला रह गया। कपोती को खोकर कपोत कितना बिलखा, कितनी बार उलके मन में आत्मघात का विचार आया और किन-किन तर्कों से उसने संयम को हाथ से जाने से रोका, भावुकजन इसे सहज ही समझ सकते हैं। कपोती से मिलने के मार्ग में आरंभ से अब तक जितनी बाधाएँ आयी थीं, उनकी स्मृतियों ने कपोत को यह वियोग भी सहने की शक्ति प्रदान कर दी और वह अपना हृदय-प्राण खोकर भी जीवित रहा।

धीरे धीरे कपोत घुलने लगा। उसके शरीर में हड्डियाँ भर रह गयीं, उसकी आँखों का चमकीलापन जाता रहा, उसके पंखों में स्निग्धता न रही, उसकी वाणी की मधुर गुंजार और हृदय की नियमित धड़कन बहुत धीमी पड़ गयी। उसकी इस दयनीय दशा को देखकर किसी ने उससे पूछा—तुम्हारी कपोती को इसकी सूचना दे दूँ?

कपोत ने एक बार प्रश्नकर्त्ता की ओर ध्यान से देखा; फिर कुछ सोचकर धीरे से कहा—नहीं, नहीं; उस तक सिर्फ इतना

संदेश पहुँचा दो कि मैं बहुत सुखी हूँ और ईश्वर से यह प्रार्थना करता हूँ कि तुम भी सदैव स्वस्थ और सुखी रहो।

प्रश्नकर्त्ता ने उसका उत्तर सुना, समझा और फिर पूछा—क्या तुम्हें विश्वास है कि कपोती सुखी होगी या अब तक जीवित होगी ?

कपोत ने आहत दृष्टि उठाकर उसकी ओर एक बार देखकर धीरे से कहा—उसकी व्यथा मैं समझता हूँ, संसार नहीं; क्योंकि मेरी प्रसन्नता के लिए आंतरिक व्यथा दबाकर हँसते हुए ही वह रहती होगी। पर संसार समझता होगा कि वह हँसती है, इसलिए सुखी है। रही जीवित रहने की बात, सो उसके प्राण मेरे पास हैं। जब तक मैं जीवित हूँ, उसे जीवित रहता ही होगा।

प्रश्नकर्त्ता यह मार्मिक उत्तर सुनकर व्यथित हो गया। कुछ देर कपोत के सूखे नेत्रों से कठिनता से निकल पाती अश्रु-बूंदों को देखता रहा, फिर न जाने क्या सोचकर उसने पूछा—तब तुम्हारी अंतिम इच्छा क्या है ?

कपोत जैसे संजीवनी पा गया। उसके मुख पर कांति की एक लहर दौड़ गयी। उसने पुलकित स्वर में कहा—मेरी ही नहीं, हम दोनों की एक ही अंतिम इच्छा है और वह यह कि अगले जन्म में हम पुनः मिलें और हमारा इस प्रकार विछोह न हो; हम एक दूसरे के ही रहें। आशीर्वाद दीजिए कि हमारी अंतिम इच्छा भगवान अवश्य पूरी करे।

मलिनता-स्वच्छता

सरोवर के किनारे उसकी कुटी थी और वह जल-संबंधी अपनी सारी आवश्यकताएँ उस सरोवर से पूरी कर लेता था ।

उस दिन जब मैं उसकी कुटी में पहुँचा, बड़ी प्यास लग रही थी । मैंने उससे जल माँगा । उसने लोटा देकर सरोवर की ओर संकेत कर दिया ।

सरोवर के निकट जाकर मैंने देखा—उसमें तो काई की मोटी परत बिछी हुई है । क्षण भर प्यास की बात पर झुँझला कर मैं खाली लोटा लिये कुटी में लौट आया ।

उसने सरल ढंग से पूछा—जल कैसा है पीने में ?

मैंने झुँझलाकर कहा—वह पानी पीने लायक भी है ?

वह चुपचाप उठा और मुझे साथ आने का संकेत करके मेरे हाथ से लोटा लेकर सरोवर के किनारे पहुँचा । उसने लोटे की तली से काई काटकर एक किनारे कर दी और जल भर कर मेरी ओर बढ़ा दिया ।

मैंने कुछ मुँह बनाकर लोटा ले लिया । देखा—जल तो बड़ा स्वच्छ है । फिर भी पीने की इच्छा नहीं हुई ।

मेरा संकोच देखकर वह बोला—ऊपरी मलिनता देखकर किसी का तिरस्कार न करो; भीतर की स्वच्छता देखने का प्रयत्न करो । ऊपरी मलिनता, आंतरिक स्वच्छता को ढक भर सकती है, उसको

मलिन नहीं बना सकती । हीरे को मलिन करके भी कीचड़ क्या उसकी कांति नष्ट कर पाती है ?

मैंने जल पिया । सचमुच वह बड़ा शीतल था, बड़ा स्वादिष्ट था । मैं तृप्त हो गया और उस तृप्ति के स्मरण मात्र से आज भी चित्त प्रफुल्लित हो जाता है ।

खाज

वह खाज से बहुत पीड़ित और विकल था। उसमें बड़ी धीरता और सहन-शीलता थी, फिर भी रह रहकर उसके आँसू आ जाते थे।

उसे यदि किसी क्रिया में कुछ सुख मिलता था तो वह थी खाज को खुजलाने की बात। खुजलाते-खुजलाते उसके शरीर से खून टपकने लगा था, गहरे-गहरे घाव हो गये थे। फिर भी जरा हाथ रुकते ही वह विकल हो जाता और हारकर फिर खुजलाने लगता।

उस दिन उससे मिलने गया तो देखा, घंटे भर में एक बार भी उसने खुजलाने के लिए हाथ नहीं बढ़ाया। मैंने समझा—अब रोग घट रहा है और शीघ्र ही वह स्वस्थ हो जायगा। मैंने उसे रोग से मुक्ति पाने की बधाई दी और पूछा—किस दवा से आराम हुआ ?

वह हँस पड़ा; बोला—खाज की ही नहीं, संसार के सारे रोगों की दवा मिल गयी है मुझे।

मैं चकित होकर उसका मुँह ताकने लगा। क्षण भर रुककर उसने फिर कहा—यह खाज नहीं है, सांसारिकता में लिप्त प्राणी की आँख खोलने वाली उपदेशिका है। अब तक मैं इसे साधारण रोग समझे था; आज मुझे जान पड़ा है कि वास्तव में यह खाज सांसारिक सुखों को प्राप्त करने की तृष्णा का ही दूसरा रूप है।

मेरी समझ में उसकी बात नहीं आयी। मैंने उसके मुख को ध्यान

से देखकर उसका आंतरिक भाव समझना चाहा; पर इसमें भी असफल रहा। तब स्पष्ट रूप से मैंने पूछा—क्या तात्पर्य है आपका ?

उसने सरल ढंग से उत्तर दिया—बात बिलकुल सीधी है।

खाज को खुजलाने से मिलनेवाला आनंद तृष्णा के विकल कर देनेवाले आनंद के समान है। खाज को खुजलाने से हो जाने वाले घाव, उन आंतरिक घावों का रूप हैं जो तृष्णा की पूर्ति के लिए जीवन भर इधर-उधर भटकते रहने से जन्म-जन्मान्तर के लिए हो जाते हैं। न खाज के घाव खुजलाने से दूर हो सकते हैं, न तृष्णा के घाव सहलाने या उनकी पूर्ति के लिए उचित-अनुचित साधन जुटाने से। ऐसे रोगों से मुक्ति का एक ही उपाय है—इनको भुला दो, इनकी ओर से उदासीन हो जाओ, इनसे ऊपर उठ जाओ।

वक्तव्य समाप्त करते-करते उसके मुख पर शांति और संतोष का ऐसा भाव था कि मैं भी परम तृप्ति का अनुभव करने लगा।

पाप से मुक्ति

बस्ती में एक बूढ़े महात्मा पधारे। श्रद्धालु जनों ने उनका खूब स्वागत-सत्कार किया। महात्मा संतुष्ट हुए। उन्होंने प्रत्येक जन से एकांत में वार्तालाप किया और सबकी समस्याओं का समाधान कर दिया। पुत्र-पुत्री, धन-धान्य, विजय-कीर्ति, सभी का आशीर्वाद प्राप्त करके जन-समूह लौट पड़ा।

जब महात्मा बाहर आये, उन्होंने देखा—एक जन अब भी सर झुकाये बैठा है। उन्होंने बड़े स्नेह से पूछा—वत्स, तेरी चिंता का क्या कारण है ?

उसने बड़ी दीनता से कहा—भगवन्, धन-जन से सुखी हूँ; परंतु पाप से मुक्ति नहीं मिलती और मन प्रतिपल पाप की ही बातें सोचता रहता है। कोई उपाय बताइए, पाप से मुक्ति पाने का।

महात्मा हँसे; बोले—अब क्यों चिंता करता है उसकी ? तेरा यह जीवन को केवल एक सप्ताह का और है।

वह व्यक्ति चौंक पड़ा और तुरंत खड़ा हो गया। कुछ पल वह महात्मा के मुख की ओर आँखें फाड़फाड़कर देखता रहा, फिर अपने प्रश्न को भूलकर घर की ओर इस तरह शीघ्रता से चल पड़ा जैसे कोई नयी योजना उसने बना ली हो।

× × ×

सातवें दिन महात्मा स्वयं उसके स्थान पर पहुँचे। उन्हें

देखते ही वह व्यक्ति लपककर उनके चरणों पर इस प्रकार झुका, जैसे मृत्यु की कराल डाढ़ों से वे ही उसे बचाने में समर्थ हों। तभी महात्मा ने पूछा—पाप की जिन बातों से पल भर भी तुझे छुटकारा नहीं मिलता था, इन सात दिनों में कितनी बार तूने उनका स्मरण किया ?

व्यक्ति ने बड़ी शांति से उत्तर दिया—भगवन्, इसके लिए अवकाश ही कहाँ मिला इन दिनों ? मृत्यु के भय से अत्यंत भयभीत होकर धन-जन की व्यवस्था और हित-चिंता में मैं इतना व्यस्त रहा कि मन जा ही नहीं सका पाप की बातों की ओर।

महात्मा मुस्कराये और बोले—बस, पाप से मुक्ति पाने का उपाय मृत्यु का यही ध्यान है। इसी से तू पाप के चिंतन से मुक्ति पा सका है जिससे पुनर्जन्म हुआ है तेरा। विश्वास है, भविष्य में अब तू सदा सतर्क रहेगा।

---

(१५)

धर्मपिता

कुएँ से एक बालिका पानी खींच रही थी। ज्योंहीं भरी हुई बाल्टी उसने कुएँ से निकाली, एक प्रौढ़ व्यक्ति ने आकर उससे कहा—बेटी मैं प्यासा हूँ, पानी पिला दे।

बालिका ने अचकचाकर उस गौर वर्ण व्यक्ति की ओर देखा और उसे कुलीन वंशज समझकर सिर झुका लिया।

वह व्यक्ति उस बालिका के संकोच का कारण न समझ सका। उसने फिर अपनी बात दोहरायी।

बालिका ने जरा सा सर ऊँचा करके धीरे से कहा—आर्य, मैं डोम कन्या हूँ। मेरा छुआ पानी आप कैसे ग्रहण कर सकेंगे?

व्यक्ति मुस्कराकर बोला—मैंने तुमसे पानी माँगा था, तेरी जाति नहीं पूछी थी और तुझे जब मैं 'बेटी' कह चुका तब तो तू मेरी 'धर्म की बेटी' हो गयी। ला, अब जल्दी से पानी पिला अपने प्यासे धर्मपिता को।

बालिका के अश्रु छलछला आये। वह धर्मपिता को पानी पिलाने लगी। उस व्यक्ति ने अंजुली बाँधी जिसमें जलधार के साथ-साथ डोम-बालिका के अश्रु-बिंद भी गिर रहे थे।

भगवान की प्राप्ति

ईश्वर को एकबार कौतुक हुआ । वह अकस्मात भक्त के सामने जा खड़ा हुआ ।

भक्त आश्चर्यमिश्रित कौतूहल से ईश्वर की ओर देखने लगा । फिर साहस करके उसने ईश्वर का स्पर्श किया, इसकी गोद में जा पहुँचा, इसके कंधे पर चढ़ गया ।

और ईश्वर खड़ा मुस्कराता रहा, मुस्कराता रहा ।

ईश्वर की कृपा से फूलकर भक्त ने कहा—मैं ही तुम्हारा सच्चा भक्त हूँ । अपनी भक्ति से मैंने तुम्हें प्राप्त किया है और मेरा ही तुम पर पूर्ण अधिकार है ।

वाक्य पूरा होते होते ईश्वर अंतर्धान हो चुका था ।

भक्त यह देखकर बिलखने लगा । उसे अपनी भूल ज्ञात हो गयी । वह जोर जोर से कहने लगा—मैं मूर्ख हूँ, अभिमानी हूँ । तू सबका है, सब तेरे हैं । तुझे वही पाता है जिस पर तेरी कृपा होती है । जो तेरी कृपा से वंचित हैं, उनसे सौभाग्य रूठा है । अतएव मेरी भूल क्षमा कर ।

भक्त यह कहकर दंडवत् गिर पड़ा । भगवान तभी प्रकट होकर उसे उठाने लगे । उनके नेत्रों से अविरल अश्रु-वर्षा हो रही थी ।

दानी !

एक दिन ईश्वर ने देवदूतों से पूछा—तुम लोग न जाने कब से भू-लोक पर घूम रहे हो। बताओ, तुमने अब तक सर्वश्रेष्ठ दानी किसको समझा है ?

एक बोला—देव ! सबसे बड़ा दानी है वह जो अपनी आवश्यकता भर धन-अन्न रख कर शेष दान करके सुखी होता है।

दूसरे दूत ने कहा—भगवन्। मैं तो उसको सबसे बड़ा दानी मानता हूँ जो भविष्य की चिंता छोड़ कर सर्वस्व दान करके स्वयं भिखारी-सा हो जाने में परम सुख समझता है।

ईश्वर ने अन्य देवदूतों को रोका और कहा—मैं 'दानी' की परिभाषा नहीं चाहता। भू-लोक-वासियों की चर्चा करके बताओ, सबसे बड़ा दानी तुम किसे समझते हो ?

तीसरा देवदूत बोला—भगवन् ! मैं तो महाराज शिवि को सबसे बड़ा दानी समझता हूँ जिन्होंने एक कबूतर की रक्षा के लिए अपने शरीर का मांस दान कर दिया था।

चौथा कहने लगा—देव ! सबसे बड़े दानी हुए हैं हरिश्चन्द्र जिन्होंने स्वप्न में दान किये हुए राज्य को भी अपनाना ठीक नहीं

समझा और उस दान की दक्षिणा के लिए पत्नी को और अपने को भी बेच दिया था।

पाँचवाँ बोला—महाराज! सबसे बड़े दानी हुए हैं कर्ण जिन्होंने जान-बूझ कर अपने दिव्य कवच - कुंडल दान करके हँसते-हँसते मृत्यु को आमंत्रित किया था।

छठे ने कहा—परम पिता! दधीचि से बढ़कर कौन दानी होगा जिन्होंने देव-समाज की रक्षा के लिए अपनी अस्थियों का भी दान दे दिया था।

× × ×

परमेश्वर ने सबकी बातें सुनीं, परंतु उनके मुख पर संतोष का भाव न झलका। सभी देवदूत चिंतित होकर एक दूसरे की ओर देखने लगे।

तभी सातवें देवदूत ने आगे बढ़कर कहा—भगवन्! एक दानी मैंने भी देखा था। वह किसी समय बहुत बड़ा धनी था। जब उसके बुरे दिन आये तो दाने-दाने को मोहताज हो गया। एक बार उसे सात दिन तक कुछ भी खाने को नहीं मिला। जब वह अचेत-सा पड़ा था, एक दयालु ने द्रवित होकर उसे कुछ खाना दिया। बड़ी चेष्टा से उठकर जब वह खाने बैठा, तभी एक दुबला-पतला कुत्ता आकर बड़ी करुण दृष्टि से उसकी ओर ताकने लगा। उस भूखे का जो हाथ

मुँह तक पहुँच चुका था, वहीं रुक गया। उसने सारा खाना उस कुत्ते को देकर ऐसी तृप्ति का अनुभव किया जैसी उसने अपने सुख के दिनों में भी कभी नहीं पायी थी।

और तभी देवदूतों ने देखा कि ईश्वर के मुख पर भी परम तुष्टि का भाव झलकने लगा है।

परख

गङ्गा-स्नान का पर्व । बड़ा बाजार—बड़ा यातायात, बड़ा कोला-हल और पुण्यार्थियों की बहुत बड़ी भीड़ ।

अकस्मात एक बालक गाड़ी के नीचे आ गया । उसके हाथ-पैर टूट गये । वह मूर्छित हो गया ।

बड़े बाजार का यह दृश्य दस-पाँच सेकेंड ठिठक-ठिठकर छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, साधु-गृही, सभी ने देखा ।

स्नान को जानेवाले जल्दी में थे, आनेवाले जल्दी में थे, दफ्तर-कचहरी वाले जल्दी में थे, काम-काजी जल्दी में थे और ठल्ले-निठल्ले भी जल्दी में थे । जिसे नहीं जल्दी थी वह थी सभ्य संसार से निर्वासित एक नारी जिसने लपककर बालक को उठा लिया और छाती से उसे चिपकाकर अपने सामने के कमरे में ले गयी ।

उसने डाक्टर को बुलाया और बच्चे की चिकित्सा करायी । चोटें गहरी थीं । उनकी चिकित्सा में उसका सारा संचित धन समाप्त हो गया, उसके सारे गहने बिक गये और मकान भी नीलाम पर चढ़ गया । उसका सारा धन डाक्टर के घर पहुँच गया और जायदाद भी डाक्टर ने ही खरीदी ।

जिस दिन उसका मकान नीलाम हो रहा था, लोगों को तीन बातों का पता चला—

बच्चे का इलाज करनेवाले डाक्टर बड़े धर्मात्मा थे और नियमित रूप से कीर्तन करते थे। वह बच्चा उन्हीं के एक संबंधी का पुत्र था जिसने डाक्टर की पढ़ाई में सदैव आर्थिक सहायता दी थी।

वह बच्चा उस स्त्री का कोई नही था।

वह स्त्री वेश्या थी।

———

निर्मोही

वह पिता था ।

जब वह घर से चलने लगा तो उसकी एक टाँग से पुत्री गयी और दूसरी से लिपट गया उसका पुत्र ।

पुत्री काजू मँगाना चाहती थी और पुत्र किशमिश के लिए मचल रहा था ।

पिता शायद जल्दी में था । उसने पहले तो दोनों को धीरे से हटाना चाहा, फिर दोनों के एक-एक थप्पड़ जड़ दिया ।

दोनों बच्चे सहमकर हट गये और पिता डग बढ़ाकर घर के बाहर हो गया । जाते-जाते पिता ने पत्नी का स्वर सुना—ऐसे निर्मोही को भगवान ने बच्चे न जाने क्यों दिये ? कौन ऐसा होगा दुनियाँ में जो छुट्टी के दिन भी बाल-बच्चों से जरा देर हँसना-बोलना न चाहेगा ?

\+ \+ \+

पिता क्लर्क भी था ।

काजू और किशमिश की पुड़ियाँ लिए क्लर्क अपने 'साहब' के बँगले पर पहुँचा । साहब भीतर थे । बाहर उनके दो बच्चे थे ।

वह साहब के बच्चों के साथ खेलने लगा । दोनों को किशमिश

दीं, काजू दिये। धीरे-धीरे खाते-खाते दोनों ने पीछे से आकर दोनों पुड़ियाँ झपट लीं। दोनों खिलखिला पड़े तो उसे भी हँसना पड़ा।

सहसा साहब की बच्ची ने उसकी टाँगों से चिपट कर कहा—मुझे गोदी में उठा लो। उसने बच्ची के मिट्टी-सने जूतों से कुछ-कुछ झिझकते हुए उसे गोदी में ले लिया।

तभी साहब के बच्चे ने मचलकर अपना अधिकार-सा जताते हुए कंधे पर बैठने का आग्रह किया। उसने इसकी इच्छा भी पूरी कर दी।

दोनों बच्चे उसके सूट से पैर रगड़-रगड़कर तालियाँ बजाने लगे। वह धूल झाड़ता जाता था, बँगले की ओर देखता जाता था और बच्चों के साथ हँसता जाता था; लेकिन उसकी हँसी में रोनापन था या खिसियानापन, यह स्पष्ट नहीं हो सका। पत्नी के वे शब्द अब भी उसके कान में गूँज रहे थे—ऐसे निर्मोही को ···· ···· ····।

परीक्षार्थी

घंटी बजी और प्रश्नपत्र तथा उत्तर-पुस्तकें बाँट दी गयीं। निरीक्षक ने दस-पाँच मिनट अनुपस्थित परीक्षार्थियों के आने की प्रतीक्षा की; पश्चात् कुर्सी पर बैठकर ऊँघने लगा।

आधे घंटे बाद से परीक्षार्थियों में कानाफूसी शुरू हो गयी। कुछ ने जेबों से परचे निकाल कर नकल करना शुरू किया और कुछ मित्रों से पूछताँछ कर काम चलाने लगे। अपने बल पर परीक्षा के दैत्य का सामना करने का साहस रखनेवालों की मूर्खता पर ये लोग मन ही मन हँस रहे थे।

और अनुशासन तथा नैतिकता की लंबी-चौड़ी बातें करनेवाला निरीक्षक अब भी ऊँघ रहा था।

× × ×

देहात से नये आए हुए सेवक ने पूरी ताकत से घंटे पर चोट की। सारा विद्यालय हिल उठा। कमरों में उसकी गूँज भर गयी। सभी परीक्षार्थी चौंककर शेष प्रश्न और समय का हिसाब करने लगे। निरीक्षक भी सजग हो उठ खड़ा हुआ। उसकी सुबुद्धि ने कमरे के दो-एक चक्कर लगाकर अपना दायित्व निभाने की उसे प्रेरणा दी।

परीक्षार्थी उसके उठते ही सतर्क हो गये। परंतु अनुभवी निरीक्षक

इस सतर्कता से समझ गया कि मेरा आलस्य अनुचित उपायों का आश्रय लेने की प्रेरणा उन्हें दे चुका है। अपनी दृष्टि में परीक्षार्थी नहीं, वही अपराधी था। वह मन ही मन लज्जित हुआ।

× × ×

कमरे में एक बार नजर दौड़ाकर उसने तीन परीक्षार्थियों को भाँप लिया। प्रथम की दृष्टि में बड़ी सरलता थी। निरीक्षक ने उसकी ओर दो-चार कदम बढ़ाये; परीक्षार्थी ने निगाह ऊपर की। चार आँखें हुईं। निरीक्षक ने कुछ स्नेह और कुछ अधिकार की झलक दृष्टि में लाकर संकेत से गर्दन हिलाकर कहा—ऐसा नहीं करते; यह अनुचित बात है।

बाद में निरीक्षक ने अपने को मित्रों से बतलाया—उस सरल दृष्टिवाले परीक्षार्थी ने उस दिन ही नहीं, परीक्षा के शेष सातों दिन गर्दन नहीं उठायी; उससे आँखें नहीं मिलायीं।

× × ×

दूसरे परीक्षार्थी का शरीर सुता हुआ था; उसके चेहरे पर चिमड़ापन था और आँखें कुछ धँसी हुई थीं। निरीक्षक ने उसकी ओर भी दो-चार कदम बढ़ाये। परीक्षार्थी ने निगाह ऊपर की। चार आँखें हुईं। कुछ झुंझलाहट और कुछ कड़ाई से उसकी ओर देखकर और संकेत से पूर्ववत् गर्दन हिलाकर निरीक्षक ने कहा—मेरे सामने ही यह सब कर रहे हो; तुम्हें शर्म नहीं आती ?

बाद में निरीक्षक ने अपने मित्रों को बतलाया—उस चिमड़े परीक्षार्थी ने परीक्षा के शेष दिनों में नकल तो नहीं की; लेकिन ताक-झाँक का आदी वह अंत तक बना रहा और रोज दो-एक बार मैं उसको टोकने के लिए मजबूर हो जाता था।

× × ×

तीसरा परीक्षार्थी सुंदर हँसमुख युवक था। उसकी निगाहें शोखी और निडरता से भरी थीं। उसके चारो ओर बैठे सभी युवक जैसे उसकी सहायता करके अपने को कृतार्थ समझ रहे थे। निरीक्षक ने ज्योंही दो-चार कदम उसकी ओर बढ़ाये, उस युवक के साथ-साथ चार-पाँच परीक्षार्थियों की निगाहें ऊपर उठीं। निरीक्षक ने सरसरी तौर से सबकी ओर देखकर युवक पर आँखें गड़ा लीं। कुछ सेकंडों के बाद उसने कुछ खिझलाहट और कुछ तिरस्कार से इसकी ओर देखकर संकेत से ही गर्दन हिलाकर कहा—तुम्हारी उद्दंडता मैं सहन नहीं कर सकता; ध्यान रखना, मैं ऐसी बातों का अभ्यस्त नहीं हूँ।

बाद में निरीक्षक ने अपने सहयोगियों को बतलाया—उस युवक के पास उस दिन ही नहीं, रोज दो-चार परचे निकले जिनसे अनुचित लाभ तो वह नहीं उठा पाया, परंतु उस कोशिश में वह बराबर लगा रहा और मेरा उस पर जरा भी प्रभाव नहीं पड़ा।

सहयोगियों में से एक ने हँसकर कहा—आप अपना प्रभाव डालने का स्वप्न देख रहे थे और वह अपने साथियों के साथ आप का सिर

तोड़ने की योजना बना रहा था। इसीलिए परीक्षा समाप्त होनेवाले दिन हम सब साथ आये थे। समझे आप ?

दूसरे ने कुछ गंभीर होकर विषय को सुलझाते हुए कहा—तुम्हें शायद यह पता नहीं है कि प्रथम युवक एक अध्यापक का भाई है, द्वितीय, एक राजकीय पदाधिकारी का सुपुत्र है और तृतीय, नगर के सबसे धनी का होनहार बेटा है जो सभी अध्यापकों को खरीदने का हौंसला रखता है।

× × ×

निरीक्षक ने विवेचक की सी गंभीरता से कहा—तो यों कहिए कि यह केवल कुछ विद्यार्थियों की ही परीक्षा नहीं थी; प्रत्युत निरीक्षकों और अभिभावकों के दायित्व की, उनमें पल्लवित नैतिकता-भावना की और वर्ग-पद-धन की भी परीक्षार्थी थी यह।

तब इसमें उत्तीर्ण कौन हुआ ?

इसका उत्तर निरीक्षक को नहीं सूझा। वह भी परीक्षक से परीक्षार्थी बन गया और सहयोगियों की ओर सहायता के लिए ताकने लगा।

नानी !

एक अंधी बुढ़िया छत पर बैठी धूप खा रही थी। उसकी सात वर्षीय नातिन अपनी छोटी सहेली के साथ खेल में मग्न थी।

थोड़ी देर बाद बुढ़िया की नातिन पानी पीने चली गयी। अकेले-पन से ऊब कर नातिन की सहेली न जाने क्या सोच बुढ़िया के पीछे आकर उसके गले से लिपट गयी और बड़े मीठे स्वर में उसने पुकारा —नानी !

नानी के जी की कली-कली खिल गयी। उसने बालिका के सर पर बड़े स्नेह से हाथ फेरते हुए पुकारा—नातिन !

नातिन की सहेली को न जाने क्या सूझा कि वह उसके गले से झूलती हुई बोली—हाँ !

तब तो अंधी बुढ़िया ने बालिका का मुख बड़े स्नेह से चूम लिया और उसके बाल सुलझाने लगी। इसी समय बुढ़िया की नातिन पानी पीकर लौट आयी। दूर से ही जब उसने अपनी नानी का दुलार इस प्रकार लुटता देखा। तो उसने तीखे स्वर में पुकारा—नानी !

नानी ने वह तीखा स्वर सुना और पहचाना; उसके हाथ एक दम रुक गये और उसने भी उसी स्वर में पुकारा—नातिन !

निकट आती हुई नातिन ने उत्तर दिया—हाँ !

उस 'हाँ' को सुनते ही बुढ़िया ने नातिन की सहेली को धक्का दे दिया और अस्पष्ट स्वर में बड़बड़ाने लगी । आँख से तो वह अंधी थी, पर नातिन की उस सहेली की ओर वह देख ऐसे ही रही थी जैसे उसे घूर रही हो ।

संबंधी

एक धनी के मकान में आग लग गयी। घरवाले किसी तरह जरूरी सामान के साथ अपने प्राण लेकर जब बाहर आये तब पता चला कि एक बालक अभी घर में ही रह गया है। तब तक आग ने भयंकर रूप धारण कर लिया था; इसलिए किसी को सूझ न पड़ा कि बच्चे को कैसे बचाया जाय।

तभी बहन में रोते हुए कहा—जो कोई मेरे भाई को बचा लायगा, उसे एक हजार रुपया इनाम दिया जायगा।

जब भीड़ में से कोई न हिला तब बड़े भाई ने रोते-रोते कहा—जो कोई मेरे भाई को बचा लायगा, उसे पाँच हजार इनाम दिया जायगा।

इस पर भी जब भीड़ में कोई हलचल न हुई तो बहुत घबराकर पिता ने कहा—जो कोई मेरे बेटे को बचा लायगा, उसे दस हजार रुपया इनाम दिया जायगा।

इसी बीच एक बुढ़िया आग की लपटों को चीर कर मकान के भीतर जा चुकी थी। पिता की बात खत्म होते होते वह बालक को लिये दरवाजे से बाहर आयी। आग की लपटों में वह इस तरह झुलस गयी थी कि द्वार के बाहर आते ही चक्कर खाकर गिर पड़ी। बालक उसकी पीठ पर बंधा होने से सुरक्षित रहा।

भीड़ के लोगों में से कुछ ने बुढ़िया के साहस की प्रशंसा की और कुछ ने कहा—इनाम के लालच में बुढ़िया ने अपने प्राण दे दिये।

तभी पता चला कि वह उस बालक की धाय थी जिसने माता के मरने पर उसे कुछ दिन दूध पिलाया था।